भारतीय दर्शन एवं वैदिक साहित्य में पर्यावरण–चेतना

किशोर कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर–इतिहास,कु.मा.रा.म.स्ना.महा. बादलपुर, गौतमबुद्ध नगर
Email: dr.kumarkishor@gmail.com

Abstract. 21वीं सदी के लगभग दो दशक गुजर चुके हैं। मानव ने विज्ञान को आधार मानकर अथाह प्रगति की है, जिसके चलते मानवीय जीवन को एक उत्कृष्ट आयाम मिला है। लेकिन क्या ये कथन सत्यता के समीप है? एक अर्थ में तो हरगिज नहीं। पर्यावरण संरक्षण की समस्या इसी दौर का सबसे ज्वलंत मुद्दा है जो मुख्यतः मानव निर्मित है। वर्तमान समय में मनुष्य प्रगति की ओर उन्मुख तो हुआ लेकिन साथ–ही–साथ पर्यावरण इस विकास से प्रभावित होकर प्रदूषित होता चला गया। विकसित देश जिस आर्थिक विकास का लाभ आज उठा रहा है वह भूतकाल में मानवीय पर्यावरण के संरक्षण को ध्यान में रखे बिना प्राप्त किया गया था।[1] प्रकृति के अत्यधिक दोहन के कारण आज जो स्थितियाँ पैदा हुई हैं उसमें प्रकृति कब तक मनुष्य का साथ दे पाएगी यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है। भारत जैसी विकासशील देशों जहाँ कृषि एवम्, अन्य संसाधनों का उपयोग आजीविका और आर्थिक प्रगति के लिए आधारभूत प्राथमिक स्रोत के रूप में किया जाता है, में चुनौतियाँ विशेषकर ज्यादा गंभीर हैं। भूकंप, ज्वालामुखी विस्फोट, भूस्खलन आदि भौगोलिक आपदाओं की तुलना में जलवायु परिवर्तन से संबंधित आपदाओं का प्रभाव कहीं अधिक दर्ज किया गया है।

इसलिए यह तथ्य और भी प्रमुख हो जाता है कि भारत का दृष्टिकोण पर्यावरण के मुद्दे पर कैसा रहा है। भारतीय दर्शन एवम् प्राचीन परम्पराओं में पर्यावरण संरक्षण को क्या महत्त्व दिया गया है।

अतः इस शोध पत्र के माध्यम से पर्यावरण पर भारतीय दर्शन के दृष्टिकोण की चर्चा के साथ–साथ वैदिक साहित्यिक परम्परा में पर्यावरण के विभिन्न आयामों से भी अवगत कराया जाएगा। जिसमें पता चल सकेगा कि हमारे पूर्वजों ने पर्यावरण को अक्षुण्ण बनाये रखने में किस प्रकार से वैज्ञानिक दृष्टिकोण का परिचय दिया।

भारतीय दर्शन में पर्यावरण के प्रति दृष्टिकोण

प्राचीन काल से पर्यावरण के प्रति चिन्ता भारतीय बौद्धिक तथा प्रचलित परम्पराओं का अभिन्न हिस्सा रही है। भारतीय दर्शन परम्परा में षड् दर्शन, सांख्य योग, मीमांसा, न्याय, वैशेषिक एवम् वेदान्त है जिन्हें आस्तिकतावादी दर्शन भी कहा जाता है और अन्य दर्शनों में प्रमुख रूप से नास्तिक दर्शन बौद्ध एवम् जैन आते हैं जिनमें पर्यावरण की अवधारणा को मजबूती से स्वीकार किया गया है। सांख्य दर्शन में पर्यावरणीय चेतना की बात को बहुत ही तार्किक ढंग से उठाया गया है। सांख्य दर्शन एक द्वैतवादी विचारधारा है जो विश्व के मूल में दो प्रकार के स्वतंत्र तत्वों की सत्ता स्वीकार करता है। इनमें से एक जड़ प्रकृति है और दूसरा चेतन पुरुष है। सांख्य दर्शन में प्रकृति भोग तथा कैवल्य दोनों का कारक है एवम् इस स्वरूप में पूज्य हैं। सांख्य की प्रकृति न तो ईश्वराश्रित है न ही मिथ्या। पुरुष की भाँति प्रकृति भी सत् है। पुरुष का अस्तित्व प्रकृति से ही सार्थक है, प्रकृति पूज्य है। सांख्य की ज्ञानमीमांसा भी प्रकारान्तर से पर्यावरण दर्शन का समर्थन करती है।

दृष्टमनुमानमाप्तवचनम् च सर्वप्रमाणसिद्धत्वात।
त्रिविधं प्रमाणसिष्टं प्रमेयसिद्धिः प्रमाणाद्धि।।[2]

E-ISSN: 2454-342x

अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान एमव् आप्तवचन ये तीन प्रकार प्रमाणों के माने गए हैं। यद्यपि पर्यावरण दर्शन की दृष्टि से प्रत्यक्ष एवम् अनुमान भी महत्वपूर्ण है क्योंकि पर्यावरण की हानि या लाभ इन्हीं के आधार से ज्ञात होता है तथापि आप्त वचनों का ज्यादा महत्व है क्योंकि वेदों–स्मृतियों, पुराणों एवम् अन्य धर्मशास्त्रें आदि के वाक्यों से उत्पन्न ज्ञानों का समावेश इसी के अन्तर्गत होता है एवम् इनमें पर्यावरण विषयक अनेक वचन एवम् निर्देश भरे पड़े हैं जिनके अनुपालन से पर्यावरण संतुलन बना रहता है।

ईश्वर कृष्ण कृत सांख्यकारिका में प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता को सिद्ध करने के लिए निम्न युक्ति का प्रयोग किया गया–

"भेदानां परिमाणात् समन्वयात् शक्तिः प्रवृत्तेश्च।
कारणकार्य विभागादविभागाद् वैश्यरुप्यस्य।।"[3]

इसका निहितार्थ है कि संसार के समस्त विषय सीमित, परतंत्र, अनित्य तथा सापेक्ष हैं। अतः संसार के सभी विषयों का मूलकारक अवश्य ही असीमित, स्वतंत्र नित्य एवम् एक होगा। यह कारण प्रकृति है।

अतः सांख्य दर्शन पर्यावरण को अक्षुण्ण बनाये रखने में अपने दार्शनिक महत्त्व को बताने में सफल हो जाता है। भारतीय दार्शनिक परम्परा में सांख्य और योग को समान तंत्र (Allied System) की संज्ञा दी गई हैं क्योंकि कई महत्वपूर्ण पक्षों पर इनमें परस्पर सहमति है। इनमें परस्पर पूरकता का भाव विद्यमान है। योग दर्शन के अनुसार पर्यावरण क्षरण का मुख्य कारण आसक्ति तथा भोग की प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति का नाश ही वैराग्य है। योगाभ्यास से वैराग्य स्वतः उत्पन्न होता है। आसक्तिहीनता वस्तुतः पर्यावरण पोषण की आधारशीला है।

न्याय दर्शन के अनुसार प्रमाणों द्वारा किसी अर्थ की परीक्षा को न्याय कहते है। यथार्थ अनुभव ही प्रमा है (यथार्थनुभवः प्रमा) अर्थात् जहाँ जो वस्तु जिस रूप में है, उसका उसी रूप में ज्ञान होना यथार्थ अनुभव है। ज्ञान के क्रियात्मक स्वरूप को प्रवृत्ति सामर्थ्य कहते हैं परन्तु प्राणिमात्र की यह प्रवृत्ति–सामर्थ्य प्रकृति संरक्षण पर आधारित है क्योंकि असंतुलित प्रकृति की अभिव्यक्ति विविध प्रकार के प्रलयकारी रूपों में होती है।[4] अतः गौतम के पदार्थ निरूपण की दृष्टि से पर्यावरण दर्शन का समुचित विश्लेषण किया जा सकता है। पर्यावरणजन्य यथार्थ ज्ञान का बोध कराना न्याय दर्शन का एक विशिष्ट आयाम है। पर्यावरण पोषण ईश्वरीय एवम् अलौकिक है। प्राकृतिक उपादानों एवम् उनके सामंजस्य को नष्ट करना ईश्वरीय व्यवस्था में प्रतिरोध उत्पन्न करना है।

महर्षि कणाद के वैशेषिक दर्शन में प्रधानतः प्रमेय का ही निरूपण किया गया है। न्याय के समान वैशेषिक दर्शन की भी यह मान्यता है कि ज्ञान स्वभावतः अपने से भिन्न किसी अन्य वस्तु को विषय बनाता है जिसकी सत्ता सदैव ज्ञान से स्वतन्त्र होती है। वैशेषिक दर्शन बौद्धों के समान बाह्य सत्ता को केवल विज्ञान स्वरूप नहीं मानता है अपितु उनकी स्वतंत्र एवम् वास्तविक सत्ता का प्रतिपादन करता है। चूँकि वैशेषिक दर्शन मौलिक सत्ताओं को एक से अधिक मानते हैं तथा ज्ञाता से पृथक उनकी स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार करते हैं। इसीलिए वैशेषिक दर्शन बहुतत्ववादी वस्तुवाद का समर्थन करता है। वैशेषिक दर्शन का यही बहुतत्ववादी वस्तुवाद पर्यावरणीय चेतना का आधार बन जाता है।[5] दर्शन का मुख्य प्रतिपाद्य जगत तथा उसमें पाये जाने वाले विभिन्न तत्त्व हैं, जो पर्यावरणीय चिंतन की दृष्टि से नितान्त महत्वपूर्ण है। यहाँ

ब्रह्मज्ञान अथवा आत्मज्ञान दर्शन का लक्ष्य नहीं है। यहाँ पदार्थ ज्ञान ही मोक्षदायक है। पदार्थों का संतुलन वस्तुतः पर्यावरण संतुलन है।

मीमांसा का धर्मशास्त्र मूलतः पर्यावरणगामी है। वेद–निर्दिष्ट विधि तथा निषेध के अनुसार क्रिया में प्रवृत्ति तथा उससे निवृत्ति का होना ही धर्म का लक्षण है। पर्यावरण के विषय में वेदों के जो वाक्य हैं वे सभी मीमांसा के लिए धर्मतुल्य हैं और जिनका अनुपालन अपरिहार्य है।

अद्वैतवेदान्त में जगत के मिथ्यात्व का सही अर्थ न समझने के कारण प्रायः लोगों में यह भ्रांति उत्पन्न हो जाती है कि पर्यावरण वस्तुतः असत् है अतएव उसके संतुलन एवम् संपोषण का प्रश्न ही नहीं उठता, किन्तु ऐसा नहीं है। अद्वैत दर्शन में जगत का निराकरण नहीं किया गया है, अपितु उसकी व्याख्या की गई है। समस्त प्रपंच सम्पूर्ण जगत का अधिष्ठान ब्रह्म अथवा आत्मा ही है। सत् एवम् असत् से विलक्षण होने के कारण उसे मिथ्या कहा गया है। मिथ्या एवम् असत् अद्वैत दर्शन में पर्यायवाची अथवा समानार्थक नहीं है। इसलिए अद्वैत दर्शन में पर्यावरणीय चेतना की व्याख्या एवम् विवेचन अत्यन्त सार्थक ढंग से किया गया है। चेतना समस्त जगत एवम् जीवन का आधार स्तम्भ है वही ब्रह्म चेतना, पर्यावरण चेतना है।

पर्यावरण संरक्षण तथा संतुलन की गहन चेतना जैन दर्शन में भी विद्यमान है जो उसके तत्वमीमांसा तथा नीतिशास्त्र से भलीभाँति समर्थित एवम् पोषित हैं। जैन दर्शन का जीव तत्व सारे जगत् में समाया हुआ है। चौतन्य लक्षणों जीवः अर्थात् जीव का लक्षण चेतना है। इस तरह संसार के छोटे से छोटे जीवन में चेतना विद्यमान रहती है। अतः प्रत्येक जीव में चेतना की बात कहकर जैन दर्शन जैव–विविधता के दृष्टिकोण को भलीभाँति प्रकाशित कर देता है।

बौद्ध दर्शन का उद्भव एवम् विकास भी पर्यावरण चिंतन से सर्वथा अनुप्राणित है। बुद्ध ने साधारण ज्ञान से बोधि तक के सोपान को राज प्रासाद में नहीं अपितु प्रकृतिक एवम् पर्यावरण की गोद में भ्रमणशील तथा समाधिस्थ होकर प्राप्त किया। बौद्ध दर्शन के अनुसार विश्व की सभी वस्तुएँ, सभी मनुष्य सभी घटनाएँ परस्पर संबंधित तथा निर्भर हैं। उनका यह परस्पर निर्भर होना पर्यावरण संरक्षण एवम् पोषण का मूलमंत्र है। अतएव बौद्ध प्रतीत्यसमुत्पाद पर्यावरण संरक्षण की आधारशिला है। बौद्ध दर्शन का पर्यावरण चेतना–विषयक दृष्टिकोण है तथा अर्ननेश के गहन परिस्थितिकी के सिद्धान्त से श्रेयस्कर है।य

अतः भारतीय दर्शन की विभिन्न दार्शनिक पद्धतियों में प्रकृति को लेकर हमारी पर्यावरणीय चेतना को सम्यक रूप से उद्घाटित किया है। इस प्रकार मुख्यतः सभी भारतीय दर्शनों में पर्यावरण की सार्थकता को निर्विवाद रूप से माना गया है।

वैदिक साहित्य में पर्यावरण–चेतना

पर्यावरण एक व्यापक शब्द है। यह उन सम्पूर्ण शक्तियों, परिस्थितियों एवम् वस्तु का योग है जो मानव जगत को चलाती है तथा उनके क्रियाकलापों को अनुशासित करती है। वैदिक साहित्य की बात करें तो पर्यावरण का ऐसा कोई भी पक्ष इसमें अछूता नहीं रहा जिसमें इन पक्षों के दर्शन न हो। भारतीय संस्कृति में प्रकृति 'पृथ्वी' को माँ कहा गया है प्माता भूमिः पुत्रे{हं पृथिव्याः[7] अर्थात् पृथ्वी हमारी माँ है और हम पृथ्वी के पुत्र हैं। चूँकि पृथ्वी माता रूप में सम्पूर्ण ब्रह्मांड के जीवों का पालन पोषण करती है। अतः इसका संरक्षण करना हमारा नैतिक कर्त्तव्य है।

वेदकालीन मनीषियों ने अंतरिक्ष से लेकर व्यक्ति तक, समस्त परिवेश के लिए शांति की प्रार्थना की है। फ्द्योः शांतिरंतरिक्षम्य् शुक्ल यजुर्वेद की यह पंक्ति एक व्यापक पर्यावरण की अवधारणा को परिभाषित करती है और वर्तमान समय में अंतरिक्ष में फैले कचरे के निवारण के लिए एक सार्थक संदेश देती है। वैदिक ऋषियों ने उन समस्त उपकारक तत्वों को देव कहकर उनके महत्व को प्रतिपादित तो किया ही साथ ही मनुष्य के जीवन में उनके पर्यावरणीय महत्व को भी भलीभाँति स्वीकार किया है। पर्यावरण को संतुलित रखने के लिए जिन देवताओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका है उनमें सूर्य, वायु, वरूण (जल) एवम् अग्नि आदि देवताओं से रक्षा की कामना की गई है ऋग्वेद एवम् अर्थवेद में दिव्य, पार्थिव और जलीय देवों से कल्याण की कामना की गई है।[8]

वैदिक साहित्य में प्राकृतिक पदार्थों से कल्याण की कामना को स्वस्ति कहा गया है इस पर आचार्य सायण एवम् नैरुक्त का चिंतन है कि अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति योग है एवम् प्राप्त का संरक्षण क्षेम है (ऋग्वेद, 5ध्51ध्11)। इस प्रकार पर्यावरण को सुरक्षित रखने की उदात्त भावनाएँ हमें अनेक जगहों पर देखने को मिलती है।

वेदों में वृक्ष संरक्षण

पर्यावरण के संतुलन में वृक्षों के महान योगदान एवम् भूमिका को स्वीकार करते हुए मुनियों ने वृहत् चिंतन किया है। मत्स्य पुराण में उनके महत्व को स्वीकार करते हुए कहा गया है कि दस कुओं के बराबर एक बाड़ी होती है, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र और दस पुत्रें के बराबर एक वृक्ष होता है।

दश कूप समा वापी, दशवापी समोहद्रः।
दशह्नद समः पुत्रे, दश पुत्रे समो द्रुमः।।[9]

अतः हमें वृक्षों को संरक्षित करने के साथ–साथ अधिकाधिक वृक्षों का रोपण भी करना चाहिए।

वेदों में वायु संरक्षण–

शुद्ध वायु जीवन की आधार शिला है। ऋग्वेद में वायु को विश्व भेषज अर्थात् सबका चिकित्सक कहा गया है तथा यह कामना की गई है कि सर्वत्र शुद्ध वायु प्रवाहित हो

आ बात वाहि भेषजं वि बात वाहि यद्रपः।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे।।[10]

वायु को अशुद्धि से बचाने के लिए वैदिक काल में यज्ञ विधि को अपनाया गया था। वायु को शुद्ध एवं गुणकारी बनाने के लिए जो अणु–भेदक शक्ति यज्ञाग्नि में है वह अन्यत्र नहीं।[11] यज्ञ को वेदों में आकाश और पृथ्वी दोनों को पवित्र करने वाला बताया गया है तथा यज्ञ कर्म में प्रवृत होने की प्रेरणा दी गयी है।

वेदों में जल संरक्षण

"जल है तो जीवन है" इस उक्ति से हम सभी सुपरिचित हैं। वेदों में भी जल को जीवनाधार मानते हुए उन्हें संग्रहीत करने की प्रेरणा दी गई है–

या आपो दिव्या उत वा स्त्रवन्ति।
खनित्रिमा उत वा या स्वयंजा।।[12]

अर्थात्–हे मनुष्यो! जो शुद्ध जल वर्षा से मिलते हैं, जो खोदने से उत्पन्न होते हैं, या जो स्वतः उद्भूत होते हैं वे संग्रहणीय हैं, उन्हें एकत्र करना चाहिए।

इस प्रकार वेदों में वर्षा के जल को संग्रहीत करने के निर्देश दिए गये हैं तथा जल को नष्ट न करने का आह्वान किया गया है–

"मा आपो हिंसी"[13]

वेदों में भूमि संरक्षण–

समस्त प्राणी जगत का आधार एवं आश्रय स्थल पृथ्वी ही है। अतः वेदों में भूमि को माता के समान वन्दनीय माना गया है। भूमि औषधियों को उत्पन्न करने वाली, वनस्पतियों व शस्य सम्पदा को धारण करने वाली, बहुमूल्य धातुओं की खान है। अतः उसे सर्वविध संरक्षित करना चाहिए।

अथर्ववेद में वर्णित है कि पृथ्वी के जिस भाग को खोदा गया हो उसे तुरन्त भर देना चाहिए। पृथ्वी के हृदय व मर्मस्थल को कभी क्षति मत पहुँचाओ–

यत् ते भूमि विखनापि क्षिप्रं तदपि रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम्।।[14]

पर्यावरण की दृष्टि से भूमि की उपयोगिता को स्वीकारते हुए यजुर्वेद में पृथ्वी का अनावश्यक दोहन न करने का निर्देश दिया गया है–

पृथिवी द्वंह पृथिवि मा हिंसी।[15]

वैदिक साहित्य में वर्णित प्रदूषण और उसके प्रभाव

पर्यावरण प्रदूषण का मुद्दा आज अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सबसे बड़ी समस्या बनकर आया है। इसकी अवधारणा भले ही नई लगती हो, किन्तु यह तो प्रकृति के प्रारम्भ से ही विद्यमान रहा है। महर्षि यास्क ने अपने निरूक्त में वस्तु या भाव के छह विकार गिनाएँ हैं, उनमें पर्यावरण के संदर्भ में अस्ति या सत्ता शब्द चिंतनीय है। इसकी व्याख्या में वे कहते हैं कि कोई वस्तु तभी अपनी सत्ता को बनाए रख सकती है, जब वह स्वयं को धारण करने में समर्थ हो। जब उसमें बाहरी हस्तक्षेप अधिक होता है तो उसकी आत्मधारणा शक्ति नष्ट हो जाती है, यही उसका प्रदूषण है। इसी प्रकार विष शब्द का प्रयोग शारीरिक एवम् प्रदूषण के रूप में किया गया है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 191 सूक्त के मंत्रें में विष शब्द का प्रयोग अनेक बार प्रयुक्त हुआ है।

ऋषि अगस्त्य ने विष की आशंका से युक्त होकर उसके निवारण के लिए इस सूक्त का प्रयोग किया है। एक और शब्द पाप भी प्रदूषण के पर्याय स्वरूप में अथर्ववेद में आया है।[16] यजुर्वेद के कई मंत्रें में–अग्नि, वायु और सूर्य द्वारा दिन, रात, स्वप्न में अथवा जागते हुए पाप एवम् प्रदूषण से छूटने की कामना की गई है।[17]

प्रदूषण निवारण के लिए ऋग्वेद में विभिन्न पदार्थों से विष आदि हरण की कामना की गई है।[18] आचार्य सायण ने 'विषादिहरणे विनियोग' लिखकर ही इस सूक्त का भाष्य लिखा है। ऋग्वेद में चेतावनी दी गई है। जो कल्याणकारक पदार्थों अथवा वचनों को अपनी क्रियाओं को दूषित करते हैं, वे राक्षस दुःख सागर में गोते खाते हैं।[19] इसी प्रकार अथर्ववेद में सभी प्रकार के प्रदूषण मुक्ति की कामना की गई है। हे मनुष्य! जो खेती का उपजा धान्य खाता है और जो दूध व जल पीता है, चाहे वह नया हो या पुराना, वह सब अन्नादि तेरे लिए विष रहित हो।[20]

वैदिक साहित्य में प्रदूषण के प्रभाव से होने वाली हानि के बारे में विस्तृत वर्णन किया गया है। प्रदूषण के कारण अत्यधिक ताप बढ़ जाने से सूर्यादि ग्रह क्रूर हो जाते हैं और सूर्य की किरणें उग्र होकर स्थावर, जंगल, नदी पर्वत वनस्पति आदि तीनों लोकों को जलाने लगती है।[21] इस प्रकार यहाँ पर ग्लोबल वार्मिंग का एक उत्तम उदाहरण देखने को मिलता है। ब्रह्मपुराण में प्रकृति प्रलय की संभावनाओं को प्रदर्शित करते हुए शार्दूल मुनि ने पर्यावरण की रक्षा के लिए विश्व को सचेत करने का उपदेश दिया है और भौतिक पर्यावरण में इनकी रक्षा का उपाय बताते हुए, इनके स्थान को इस प्रकार परिगणित किया है– (1) पृथ्वी मंडल, (2) जल मंडल, (3) तेजो मंडल, (4) वायु मंडल और (5) आकाश मंडल।[22]

वस्तुतः इस बात में कोई दो मत नहीं है कि वैदिक साहित्य ने पर्यावरण से जुड़े प्रत्येक पहलू पर बहुत ही सजीव ढंग से प्रकाश डाला है। उपरोक्त तथ्यों से यह बात पूर्णतः पुष्ट हो जाती है कि हमारे मनीषियों ने भारतीय जनमानस को कैसे पर्यावरण का पाठ पढ़ाया और इसके प्रति संवेदनशील रहने के लिए प्रेरित किया।

उपसंहार

निःसंदेह भारतीय संस्कृति के प्रत्येक पक्ष ने पर्यावरण को एक महत्वपूर्ण स्थान दिया। लेकिन औद्योगिकीकरण, बाजारवाद एवम् पाश्चात्य पूंजीवादी दृष्टिकोण ने हमारे मौलिक स्वरूप को कई परतों से ढ़क दिया और भारत ने भी पूँजीवाद की तरफ बढ़ते हुए प्रकृति को निठुर मानकर उसे नियंत्रित करने का प्रयास किया यद्यपि भारत ने अन्य देशों की तुलना में पर्यावरण पर होने वाले अंतर्राष्ट्रीय समझौतों का समर्थन करके आज भी अपनी सजगता का प्रमाण दिया है। यह बात सर्वथा सत्य है कि प्रकृति के दोहन के बिना जीवन संभव नहीं है किंतु उतना ही दोहन किया जाना चाहिए जितने की आवश्यकता हो। उससे अधिक उपभोग पर्यावरण असंतुलन की समस्या उत्पन्न कर सकता है इसलिए आज विकास पर नहीं, अपितु सतत् विकास की आवश्यकता पर बल दिया जाना चाहिए। वर्तमान समय में मानव द्वारा पर्यावरण के साथ समन्वयात्मक सहयोगात्मक और सामंजस्यपूर्ण संबंध को अपनाया जाना चाहिए। अतः भारत अपनी प्राचीन भारतीय संस्कृति से प्रेरणा लेकर पर्यावरण जैसे जटिल मुद्दे पर पूरे विश्व का मार्गदर्शक बन सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. ए मापाजी सिनजेला, फ्डेवलपिंग कंट्रीज पर्सेप्शन्स ऑफ इनवायरमेंटल प्रोटेक्शन एंड इकॉनामिक डेवलपमेंटय्, आई–जे–आई–एल– वाल्यूम 24 (1984), पृ– 489–

2. Original Sanskrit: Samkhya Karika Compiled and Indexed by Ference Ruzsa ¼2015½, Sanskrit Documents Archieves, Samkhya Karika by Iswara Krisna.

3. Ibid.

4. B.K.k~ Motilal "Perception An Essay on Clssaical Indian Theories fo Knowledge"k~ (Oxford University Press, 1986), p.k~ xiv.

5. Dsagupta, Surendranath, "A History fo Indian Philosphy ¼1975½, Vol.k~ 1, Ed.k~ Motilal Banarsidsa, Delhi, ISBN 978&81&208&0412&8.

6. Scriberrsa, C.k~ "Buddhist Philosophy and the Ideals fo Environmentalism, Ph.D.k~ Thesis, 2010, 1&250; Department fo Philosophy, DURHAM University.

7– शुक्ल यजुर्वेद, 36/17

8– ऋग्वेद (1/158/1, 7/35/11) एवम् अर्थवेद (10/9/12)

9– मत्स्य पुराण (154:512)

10– ऋग्वेद– 10/137/3

11– वाजपेयी दीप्ति, संस्कृत साहित्य में पर्यावरण शिक्षा, मुहिम प्रकाशन दिल्ली, 2016, पृ– 16–

12– सोजित्र, विजय एस–, वैदिक संस्कृति और पर्यावरण संरक्षण, पैराडाइज पब्लिशर्स, जयपुर, 2011, पृ––115

13– वही, पृष्ठ–116

14– अथर्ववेद– 12/1/35

15– यजुर्वेद– 13/18

16– अथर्ववेद, 10/1/10

17– यजुर्वेद, 20/14 से 16

18– ऋग्वेद मण्डल 7, सूक्त 50–

19– ऋग्वेद 7/104/9

20– अथर्ववेद 8/2/19

21– महाभारत, भीष्मपर्व, 77/11 तथा वायुपुराण, 7/41–42–

22– ब्रह्मपुराण 232/14–19 गीताप्रेस, गोरखपुर।